# आचार्यपद की महत्ता

*श्री हस्तीमल गोलेच्छा एवं श्रीमती शर्मिला खींवसरा*

तीर्थंकर के प्रतिनिधि आचार्य होते हैं। वे 36 गुणों के धारक तथा आठ सम्पदाओं से युक्त होते हैं। वे अगीतार्थ साधुओं के कवच होने के साथ शिष्य को चार प्रकार का विनय प्रदान करते हैं। आगमों में भी उनकी महिमा गायी गई है। आचार्य की अविनय आशातना करने वाला शिष्य मार्गच्युत हो जाता है तथा दुष्परिणाम भोगता है। आलेख आगमिक प्रमाणों से उपेत है। **-सम्पादक**

जह दीवा दीवसयं पईप्पए, सो य दीप्पए दीवो।
दीवसमा आयरिया अप्पं च परं च दीवंति।।

निर्युक्तिकार आचार्य भद्रबाहु ने आचार्यों को उस दीपक की उपमा दी है, जो स्वयं प्रकाशित होते हुए दूसरों को भी प्रकाशित करता है और जिससे अन्य सैकड़ों-सहस्रों दीप प्रदीप्त किए जा सकते हैं।

सुहुम्मं अग्गिवेसाणं, जंबू नामं च कासवं।
पभवं कच्चायणं वंदे, वच्छं सिज्जं भवं तहा।।

**(नन्दी सूत्र, गाथा-25 युग प्रधान पट्टावली )**

आर्य सुधर्मा से लेकर आज पर्यन्त दीर्घावधि में हुई क्रमबद्ध आचार्य-परम्परा में हुए त्यागी तपस्वी आचार्यों ने और उनसे ही संयम की सीख लेकर सहस्रों प्रभावक श्रमण-श्रमणियों ने प्राणिमात्र को अभय देने वाले पंच महाव्रत रूप धर्म को अध्ययन, अध्यापन, प्रवचन, प्रख्यापन एवं गहन चिन्तन-मनन के स्नेह से सिंचित कर अक्षुण्ण रखा है और अनगिनत लोगों को सम्यक्त्व प्रदान कर प्राणिमात्र पर अनुकम्पा की है। उसी से आज तक भव्यजनों के हितार्थ कहा गया कल्याणकारी धर्म पंचम आरे में भी पढ़ा और आचरित किया जा रहा है।

सर्वज्ञ प्रभु महावीर ने तीर्थ प्रवर्तन काल में ही गणधरों को पद प्रदान करते समय आर्य सुधर्मा को दीर्घजीवी समझकर धुरी के स्थान पर रख कर गण की अनुज्ञा दी, अपना उत्तराधिकारी बनाया।

**'पछी श्री वीर पाटे पांचवा गणधर श्री सुधर्मा स्वामी पहले पाटे थया।'**

-वीर वंशावलि/तपागच्छ वृद्ध पट्टावली-मुनि जिन विजय जी

**'भगवान् महावीर ने पहेली पाट पर श्री सुधर्म स्वामी निराज्या।'**

-प्रभु वीर पट्टावली- मुनि मणिलाल जी- जैन धर्म का मौलिक इतिहास में उल्लेख।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रभु वीर सर्वज्ञ थे। उन्हें ज्ञात था कि नौ गणधर उनके जीवनकाल में ही अपना आत्मार्थ सिद्ध कर मोक्ष में चले जायेंगे। शेष इन्द्रभूति गौतम और सुधर्मा में से गौतम स्वामी को भगवान के निर्वाण के बाद ही केवल ज्ञान हो जाता, अतः गौतम ऐसा कहते- ''मैं ऐसा देखता हूँ, मैं ऐसा कहता हूँ।'' जबकि कोई भी पट्टधर अपने पूर्ववर्ती आचार्य के आदेशों, आदर्शों एवं सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करता है तथा आज्ञाओं का पालन करवाता है।

भगवान के निर्वाण के समय आर्य सुधर्मा चार ज्ञानधारी और 14 पूर्वों के ज्ञाता थे, केवली नहीं, अतः वे ऐसा कह सकते थे ''भगवान् ने फरमाया है'' अतः तीर्थंकर महावीर द्वारा प्ररूपित श्रुत परम्परा को अविच्छिन्न रूप से यथावत् रखने की दृष्टि से आर्य सुधर्मा को प्रथम पट्टधर नियुक्त किया गया।

मूलतः जिनेन्द्र भगवान द्वारा स्थापित तीर्थ की महत्ता बतलाने के लिए आचार्य परम्परा स्थापित की गई। आचार्यों ने प्रवचन को सुरक्षित रखा और अपने-अपने उत्तराधिकारी को इस रूप में दिया-

**''सुयं मे आउसं, तेणं भगवया एवमक्खायं।''**

'हे आयुष्मन् मैंने सुना है, उन भगवान के द्वारा ऐसा कहा गया है। जैनागमों में आचार्यों की महिमा का विविध स्थानों पर विविध रूपों में वर्णन है। ''अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।'' तीर्थंकरों की वाणी मुक्त सुमनों की वृष्टि के समान होती है, महान् प्रज्ञावान् गणधर उसे सूत्र रूप में ग्रथित करके व्यवस्थित आगम का रूप देते हैं। इसलिए आगमों में वर्णित आचार्य-महिमागान को यह भी कह सकते हैं कि तीर्थंकरों ने स्वयं अपने मुख से आचार्य महिमा गाई है।

**जैनागमों में आचार्य महिमा**

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र, शतक 5, उद्देशक 6 में गौतम की पृच्छा पर प्रभु वीर के द्वारा गण-संरक्षण तत्पर एवं अपने कर्त्तव्य और दायित्व का भली-भांति वहन करने वाले आचार्य और उपाध्याय के लिए एक, दो या अधिकाधिक तीन भव में सिद्धत्व प्राप्ति की प्ररूपणा की गई है।

*''गोयमा! अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति अत्थेगइए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति, तच्चं पुण भवग्गहणं नातिक्कमंति।''*

श्रावक आवश्यकसूत्र की बड़ी संलेखना में वर्णित है ''तीर्थंकर भगवान को नमस्कार करके अपने धर्माचार्य जी को नमस्कार करता हूँ।''

*''नमोत्थुणं मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स''*

अन्तकृदशा सूत्र के वर्ग 6, अध्ययन 15 में अतिमुक्त- गौतम संवाद में गौतम ने भगवान को आचार्य कहा है। ''मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक भगवान महावीर।''

*''मम धम्मायरिए धम्मोवएसए भगवं महावीरे जाव संपाविउकामे।''*

दशवैकालिक सूत्र, अध्ययन 9 विनय समाधि के द्वितीय उद्देशक, गाथा 12 में कहा है-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जे आयरिय उवज्झायाणं, सुस्सूया वयणंकरा।
तेसिं सिक्खा पवड्ढंति, जलसित्ता इव पायवा।।

जो शिष्य आचार्य और उपाध्याय की सेवा-शुश्रूषा करने वाले हैं और उनकी आज्ञा का पालन करने वाले हैं, उनकी शिक्षा जल से सींचे गए वृक्षों के समान बढ़ती रहती है।

आचारांगसूत्र, प्रथम श्रुतस्कन्ध के अध्ययन 5 के उद्देशक 5 में शास्त्रकार ने कहा है, "इस मनुष्य लोक में वे आचार्य मन, वचन और काया से गुप्त, इन्द्रिय संयम से युक्त, प्रबुद्ध आगम ज्ञाता और आरम्भ से विरत महर्षि हैं- जो समाधिमरण के इच्छुक और मोक्षमार्ग में उद्यम करने वाले हैं।"

रायप्पसेणीय सूत्र में राजा प्रदेशी ने संथारे के समय आचार्य केशीकुमार को नमन किया है। उववाइय सूत्र में कोणिक द्वारा भगवान को परोक्ष वन्दन में 'धमाचार्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। अम्बड़ के 700 शिष्यों ने संथारा ग्रहण करते हुए अरिहंतों और सिद्धों के बाद धर्माचार्य अम्बड़ को नमन किया है।

**आचार्यों की आठ सम्पदा**

दशाश्रुतस्कन्ध की चौथी दशा और स्थानांग सूत्र के अष्टम स्थान में गणिसम्पदा सूत्र में आचार्यों की आठ सम्पदाओं का वर्णन है। साधु-समुदाय, गण या गच्छ के स्वामी को आचार्य, गणी या गच्छाधिपति कहते हैं और उनके गुणों के समूह को गणि सम्पदा। इन्हीं गुणों से आचार्य अपने मुख्य कर्तव्य 'गण की रक्षा' का निर्वाह करते हैं।

**"इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं अट्ठविहा गणिसंपया पण्णत्ता" (दशाश्रुतस्कन्ध)**

**स्थविर भगवन्तों के द्वारा कथित आठ गणिसम्पदाएँ इस प्रकार हैं-**

1. **आयारसंपया (आचारसंपदा)-** आचारसम्पन्न आचार्य का व्यवहार शुद्ध होगा तो संयम की समृद्धि होगी।
2. **सुयसंपया (श्रुतसंपदा)-** अनेकों का मार्गदर्शक एवं निर्भय विचरण कर्त्ता होने के लिए आचार्य का बहुश्रुत होना आवश्यक है।
3. **सरीरसंपया (शरीरसंपदा)-** ज्ञान और क्रिया भी शारीरिक सौष्ठव होने पर ही धर्म प्रभावना में सहायक होते हैं।
4. **वयणसंपया (वचनसंपदा)-** आचार्य महाराज को आदेय, मधुर, आगम सम्मत स्पष्ट एवं निष्पक्ष वचन बोलने चाहिए।
5. **वायणासंपया (वाचनासंपदा)-** वाचनाओं के द्वारा बहुश्रुत गीतार्थ प्रतिभा सम्पन्न शिष्यों को तैयार करना भी आचार्य का गुण है।
6. **मतिसंपया (मतिसंपदा)-** औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी इन चार प्रकार की

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

बुद्धियों से आचार्य सम्पन्न होते हैं।

7. **पओगसंपया (प्रयोगमति-संपदा)-** पक्ष-प्रतिपक्ष युक्त शास्त्रार्थ के समय वाद प्रवीणता, बुद्धि कुशलता होनी चाहिए।
8. **संगहपरिण्णा-संपया (संग्रहपरिज्ञा-संपदा)-** आचार्य संघ-व्यवस्था में निपुण हो। अध्ययन, विनय, विचरण, समाचारी को सुव्यवस्थित रखे।

**अगीतार्थ साधु के कवच आचार्य**

व्यवहारसूत्र के उद्देशक 6 में अगीतार्थ साधु के अकेले रहने का निषेध किया गया है। उसे आचार्य के चरणों में रहना चाहिए।

आचारांगसूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध, अध्ययन 5 के चतुर्थ उद्देशक में अव्यक्त साधु के द्वारा आचार्य में एक मात्र दृष्टि रखने, उनके द्वारा प्ररूपित मुक्ति में मुक्ति मानने और उनके सान्निध्य में रहने का संकेत किया गया है। 'एयं कुसलस्स दंसणं' यह कुशल महावीर का दर्शन है। आचारांग टीका में-

*जहा दिया पोयमपक्खजायं सवासया पविउमणं मणागं।*
*तम चाइया तरूण पत्तजाय ढंकादि अव्वत्तगमं हरेज्जा।।*

जैसे नवजात पक्षरहित पक्षी को ढंकादि पक्षियों से भय रहता है। वैसे ही अव्यक्त अगीतार्थ को अन्यतीर्थिकों का भय बना रहता है। ऐसे भय समय में आचार्य ही अगीतार्थ के रक्षा कवच होते हैं।

**विनय प्रदाता आचार्य**

दशाश्रुत स्कन्ध- की चौथी दशा में आचार्य शिष्य को चार प्रकार का विनय सिखाते हैं।

1. **आयार-विणएणं (आचारविनय)-** वे महाव्रत, समिति-गुप्ति, विधि-निषेध, तप, समाचारी एवं एकाकी विहार का ज्ञान कराते हैं। शिष्यों को व्यवहार का विनय सिखाते हैं।
2. **सुय-विणएणं (श्रुतविनय)-** शिष्यों को बहुश्रुत बनाने के लिए सूत्रार्थ की समुचित वाचना देते हैं।
3. **विक्खेवणा-विणएणं (विक्षेपणाविनय)-** यथार्थ संयमधर्म एवं उसमें स्थिर रहना सिखाते हैं।
4. **दोस-निग्घायण विणएणं (दोष निर्घातना विनय)-** शिष्य समुदाय में उत्पन्न दोषों को दूर करते हैं।

**तिन्नाणं तारयाणं आचार्य महाराज**

पंचम काल में आचार्य महाराज स्वयं संसार सागर से तिरते हैं तथा दूसरों को तिराते हैं। आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुत स्कन्ध के पंचम अध्ययन के पंचम उद्देशक में सूत्र 166 में आचार्य महिमा का वर्णन है। शास्त्रकार कहते हैं, "जैसे एक जलाशय/ ह्रद जो जल, कमल से परिपूर्ण अनेक जलचर जीवों का संरक्षक होता है इसी प्रकार आचार्य की महिमा है।" व्याख्या में आचार्य को सीता और

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सीतोदा नामक नदियों के प्रवाह में स्थित ह्रद के समान बताया है जिसमें से जल प्रवाह निकलता भी है और मिलता है। इसी भांति आचार्यों में दान और आदान दोनों हैं। वे शास्त्रज्ञान एवं आचार का उपदेश देते भी हैं तथा स्वयं भी ग्रहण एवं आचरण करते हैं। इस प्रकार वे 'तिन्नाणं' भी हैं और 'तारयाणं' भी।

सुधर्मा स्वामी से लेकर आज तक परम्परागत रूप से आचार्य प्रभुवीर की जन-कल्याण हेतु दी गई जिनवाणी को ही नगर-डगर जन-जन तक पहुँचा रहे हैं। ऐसे में आचार्यों की राह पर चलना तो प्रभु महावीर की राह पर चलने के समान है।

कुशल नेतृत्वकर्त्ता आचार्य वह मजबूत धुरी है, जिसके सहारे चतुर्विध संघरूप चक्र घूमता हुआ प्रगति करता है। अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल चरण बढ़ाता है।

**आचार्य महाराज के 36 गुण**

ज्ञानीजनों ने आचार्य के 36 गुण प्ररूपित किए हैं, इनमें जितने गुण उत्कृष्ट होते हैं उतना ही आचार्य धर्म-प्रभावक होता है, यथा-

| | | |
|---|---|---|
| 1. जाति सम्पन्न | 2. कुल सम्पन्न | 3. बल सम्पन्न |
| 4. रूप सम्पन्न | 5. विनय सम्पन्न | 6. ज्ञान सम्पन्न |
| 7. शुद्ध श्रद्धा सम्पन्न | 8. निर्मल चारित्र | 9. लज्जाशील |
| 10. लाघव सम्पन्न | 11. ओजस्वी | 12. तेजस्वी |
| 13. वर्चस्वी | 14. यशस्वी | 15. जित क्रोध |
| 16. जित मान | 17. जित माया | 18. जित लोभ |
| 19. जितेन्द्रिय | 20. जित निंदा | 21. जित परीषह |
| 22. जीविताशा मरण भय विप्रमुक्त | 23. व्रत प्रधान | 24. गुण प्रधान |
| 25. करण प्रधान | 26. चरण प्रधान | 27. निग्रह प्रधान |
| 28. निश्चय प्रधान | 29. विद्या प्रधान | 30. मंत्र प्रधान |
| 31. वेद प्रधान | 32. ब्रह्म प्रधान | 33. नय प्रधान |
| 34. नियम प्रधान | 35. सत्य प्रधान | 36. शौच प्रधान |

अन्य विवक्षा से भी आचार्य भगवन्तों के 36 गुण कहे गए हैं- 5 महाव्रतों का पालन, 5 आचारों का पालन, 5 इन्द्रियों का संवर, 4 कषाय का त्याग, नववाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन, 5 समिति, 3 गुप्ति (अष्ट प्रवचन माता का आराधन-पालन) इन 36 गुणों से पूर्ण होते हैं।

**आचार्यों के प्रति शिष्यों का विनय-व्यवहार-**

गण और गणी के प्रति योग्य शिष्य के प्रमुख कर्त्तव्य दशाश्रुतस्कन्ध की चौथी दशा में बताए गए हैं, यथा-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

1. **उवगरण उप्पायणया (उपकरण उत्पादन)**- उपकरण संबंधी कर्त्तव्यपालन। गवेषणा करके वस्त्र, पात्र, उपकरण प्राप्त करना, फिर सुरक्षित रखना, जो जिसके योग्य हो उसे गुरु आज्ञा से यथायोग्य देना।
2. **साहिल्लणया (सहायक होना)**- गुरुजनों के अनुकूल हितकारी वचन बोलना, शारीरिक हलन-चलन विवेक से करना, सेवा करना, रुचिकर व्यवहार करना।
3. **वण्णसंजलणया (गुणानुवाद)**- आचार्यादि का गुणकीर्तन करना। अवर्णवादी को प्रत्युत्तर देकर निरुत्तर करना, सेवा-भक्ति करना एवं यथोचित आदर देना।
4. **भारपच्चोरुहणया (भार प्रत्यारोहण)**- आचार्य के कार्यभार को सम्हालना, धर्म-प्रचार, शिष्यों को शुद्ध आचार का अभ्यास कराना, विवाद निराकरण एवं गण के साधु-साध्वियों की संयम-समाधि की उत्तरोत्तर वृद्धि के प्रयास करना।

**आचार्यों की अविनय आशातना का दुष्परिणाम-**

*धम्मज्जियं च ववहारं बुद्धेहायरियं सया।*
*तमायरंतो ववहारं गरहं नाभिगच्छइ ।।*

**-उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन 1, गाथा-42**

*धर्मार्जित व्यवहार सदा आचार्यों ने आचरित किया।*
*गर्हा को प्राप्त नहीं होता, जिसने वैसा आचार किया।।*

तीर्थंकर के अभाव में साधक के पथ प्रदर्शक आचार्य की जो अविनय आशातना और अवहेलना करते हैं उनके लिए उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन 'विनय श्रुत' में कहा गया है, आज्ञा पालन और सेवा शुश्रूषा से दूर भागने वाला साधु मिथ्या आलोचक, अविनीत, दुर्बोध होकर सभी प्रकार के उत्तम लाभों से वंचित रहता है एवं दुष्परिणाम भोगता है।

दूषित विचार आचार स्वभाव वाले शिष्य को ''जहा सुणी पूइ कण्णी''(उत्तराध्ययन, प्रथम अध्ययन, गाथा-4) सड़े कान वाली कुतिया की तरह गण, गच्छ, संघ सभी से तिरस्कार पूर्वक निकाल दिया जाता है। उत्तम शील को छोड़कर आचार्य का अविनय करने वाला दुःशील में रमण करता है। (उत्तरा. 1.5) दशवैकालिक सूत्र, अध्ययन-9 विनय समाधि, उद्देशक-1 में गुरु एवं आचार्य की अविनय आशातना के दुष्परिणाम दिए गए हैं, यथा-

*जे यावि मंदित्ति गुरुं विइत्ता, डहरे इमे अप्पसुए त्ति णच्चा।*
*हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा, करंति आसायणं ते गुरूणं।।* **(गाथा-2)**

जो शिष्य गुरु को अल्पश्रुत और मंद बुद्धि जानकर गुरु की हीलना करते हैं वे अपने ज्ञानादि भाव की कमी करते हुए मिथ्यात्व भाव को प्राप्त होते हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

एवायरियं पि हु हीलयंतो णियच्छइ जाइ पहं खु मंदो ।। (गाथा-4)

अर्थात् आचार्य का अनादर करने वाला मंदमति एकेन्द्रिय आदि विविध जातियों, योनियों में जन्म मरण प्राप्त करता है।

आयरियपाया पुण अप्पसण्णा अबोहि-आसायण णत्थि मुक्खो ।। (गाथा 5,10)

अर्थात् आचार्यचरण की अप्रसन्नता अबोधि जनक होती है। अतः आचार्य की अविनय आसातना या अवहेलना करने वालों को सम्यक् दर्शन आदि आत्मगुणों की प्राप्ति नहीं होती, उसे मोक्ष प्राप्त नहीं होता।

न या वि मुक्खो गुरु हीलणाए ।। (गाथा-7)

अतः गुरु आशातना को हानिप्रद जानकर उन दोषों से विरत रहने वाला साधु गुरु-इच्छा के अनुरूप चलने में एवं श्रुत-चारित्र की आराधना में ऊर्ध्वगामी बनकर संसार में पूजनीय होता है।

भगवतीसूत्र शतक 20, उद्देशक 8 के अनुसार भगवान महावीर का यह शासन पंचम आरे के चरम दिवस तक इन्हीं आचार्यों की धर्म प्रभावना से जयवंत रहेगा।

पंचम आरे के अंत में भी एक साधु, एक साध्वी, एक श्रावक, एक श्राविका रहेंगे जो एकभवतारी होंगे।

सम्यक्त्व प्रदान करने वाले उन सत्पुरुषों के उपकार से यह जीव अनेक जन्मों तक करोड़ों प्रकार के उपकार करके भी उऋण नहीं हो सकता। जगत् के उन समस्त ज्ञानवान्-क्रियावान आचार्य भगवन्तों के पावन सरोजों में हृदय की असीम आस्था के साथ सादर समर्पित।

*-'अंकुर' एम-51-ए, अरना सागर लिंक रोड, अजमेर-305001 (राज.)*

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org